विज्ञान प्रकाश वर्ष : 24, अंक 1, जनवरी–मार्च 2026 ISSN : 1549-523-X

जल

जल प्रकृति का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व इस रूप में है कि सृष्टि के आरम्भ में भी उसी के होने का ही उल्लेख ऋग्वेद (10.129) का ऋषि करता है।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

वह एक ऐसा तत्त्व है, जो स्पन्दायमान जगत् के जीवन का आधार है। विभिन्न नदियों में प्रवाहित जल समस्त प्राणियों के लिए जीवन तत्त्व है, जिससे विभिन्न प्रकार की भोज्य सामग्री सभी जीवों को प्राप्त होती है। यदि प्रकृति में जल न हो तो अनेक विकसित सभ्यताओं का दर्शन हमें प्राप्त नहीं होता और न ही समृद्ध संस्कृतियों का प्रकाशन होता। उल्लेखनीय है कि विश्व की सारी सभ्यताएँ नदियों के किनारे पर पल्लवित और पुष्पित हुईं। इसके अतिरिक्त जल का एक दूसरा स्रोत साग़र है, जिसकी भूमिका पृथ्वी के सन्तुलन में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। जल की प्राप्ति वर्षा से भी होती है, जो भूमि को सस्य श्यामला बनाती है और भूमि के समस्त जल स्रोतों का प्रमुख आधार है। इसके आकर मेघ हैं, जिन्हें पर्जन्य भी कहा गया है। वेद में इन्हें पिता कहा गया है।

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु (*अथर्ववेद*, 12.01.12)

जल के अनेक सन्दर्भ संपूर्ण भारतीय साहित्य एवं संस्कृत साहित्य में अनेकत्र प्राप्त होते हैं। रघुवंश (1.26) में कालिदास लिखते हैं कि

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्॥

कालिदास के द्वारा जल को शिव की आठ मूर्तियों में से एक मूर्ति ही नहीं, अपितु आद्या सृष्टि के रूप में निरूपित किया गया है।

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥ (*अभिज्ञानशाकुन्तल*, 1.1)

यह जल तत्त्व भारतीय दर्शन में शीत और स्पर्श आदि गुणों समन्वित समस्त रसों का आधार माना गया है।

शीतस्पर्शवत्यापः (*तर्कसंग्रह*)

अथर्ववेद में आपः 'जल' को विशेष महत्त्व मिला है। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि जहाँ ऋग्वेद का प्रारम्भ अग्नि की स्तुति से हुआ है, वहीं अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के 4-5-6 सूक्तों में आपः 'जल' की स्तुति है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के छठे सूक्त के प्रथम मन्त्र में आपः को देवी बताते हुए उनकी शक्तियों और उपयोग पर भी प्रकाश डाला गया है। इन्हें यज्ञ, पान और रोगों के शमन तथा भय के निवारण हेतु कल्याणकारी विवेचित किया गया है-

शं नो देवीरभिष्टयआपो भवन्तु पीतये।
शं यो रभि स्रवन्तु नः॥ (*अथर्ववेद*, 1.6.1)

जल को भारतीय दर्शन के अंतर्गत अनेक प्रसंगों में विभिन्न रूपकों में निरूपित किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता (2.70) में आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में उदाहरण स्वरूप समझाने के लिए नदियों और समुद्र से सादृश्य बताया गया है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोन कामकामी॥

जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं। गीता (7.4) में जल को अष्टधा प्रकृति के एक तत्त्व के रूप में उल्लिखित किया गया है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, और अहंकार भी - इस प्रकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी प्रकृति है।